**International Journal of Research in Social Sciences**
Vol. 10 Issue 05, May 2020
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

# संथाल विद्रोह : स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम

**डॉ. अभय कुमार सिंह,** असिस्टेंट प्रोफेसर,
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग,
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

## शोध–सार

भारतीय इतिहास में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही देश के अलग–अलग हिस्सों में हुए विभिन्न विद्रोह–आंदोलनों का इतिहास भी प्रारंभ होता है। इस आलोक में भारत के जनजातीय आंदोलन भी अपवाद नहीं हैं। अस्तु, आंदोलन का क्षेत्र या स्वरूप कोई भी हो कुछ उल्लेखनीय बातें मूल रूप से सामान्य पाई जाती हैं, जिनमें मुख्यतः ब्रिटिश शासन द्वारा जनजातीय जीवन शैली, उनको सामाजिक संरचना एवं उनकी संस्कृति में हस्तक्षेप करना विचारणीय है। हालांकि, जमीन से जुड़े मामलों में ब्रिटिश हस्तक्षेप करना संभवतः इसमें सबसे प्रमुख कारण रहा है। इतना ही नहीं, भारत में ब्रिटिश भू–राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत संयुक्त स्वामित्व वाली या सामूहिक सम्पत्ति की (जिसे अविभाजित बिहार में खुण्ट–कट्टी व्यवस्था के नाम से भी जाना जाता था) अवधारणा वाली पारंपरिक एवं स्थापित आदिवासी परम्पराओं को पूरी तरह से क्षीण किया गया। आदिवासी बहुल क्षेत्रों में ईसाई धर्मप्रचारकों की गतिविधियों की भी प्रतिक्रियाएं देखी गईं, किंतु जिस बात का सबसे ज्यादा रोष जनजातियों में देखा गया वह यह था कि ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के साथ–साथ जनजातीय क्षेत्रों में जमींदार, महाजन और ठेकेदारों के एक नए शोषक समूह सशक्त होकर उभरे। आरक्षित वन सृजित करने और लकड़ी एवं पशु चारण की सुविधाओं पर भी प्रतिबन्ध लगाए जाने के कारण आदिवासी जीवन–शैली बुरी तरह से प्रभावित हुई, क्योंकि आदिवासियों का सामान्य जीवन सबसे अधिक वनों पर ही निर्भर करता है। रेखांकनीय है कि वर्ष 1867 ई. में झूम कृषि पर प्रतिबन्ध लगाकर नए वन कानून बनाए गये। इन सभी कारणों ने देश के विभिन्न भागों में जनजातीय आंदोलनों को जन्म दिया, विद्रोहों को जन्म दिया। यही वजह है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता आदोलन के परिप्रेक्ष्य में संथाल विद्रोह की प्रकृति, स्वरुप एवं विस्तार का अनुशीलन अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

कुंजी शब्द
उपनिवेशवाद, आदिवासी, आदिवासी–अस्मिता, दिकू, पारंपरिक अधिकार.

## प्रस्तावना

आधुनिक इतिहासकारों, विशेषकर भारतीय इतिहासकारों की प्रबल धारणा है की भारत में किसान आन्दोलन सहित अन्य सभी प्रकार के आंदोलनों की तुलना में जनजातीय आन्दोलन अधिक सुसंगठित और अधिक हिंसक प्रकृति के हुए हैं। डा. एस. के. गंजू के अनुसार "वर्ष 1770 ई. से लेकर वर्ष 1947 ई. तक ऐसे लगभग 70 जनजातीय विद्रोह हुए हैं।"[1] अध्ययन एवं विश्लेषण की दृष्टि से पूरे जनजातीय आन्दोलनों को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है। "प्रथम चरण (1795–1860

ई.) का जनजातीय आन्दोलन अंग्रेज साम्राज की स्थापना के साथ–साथ ही शुरू हो गया था। आदिवासी आन्दोलनों का स्वरूप प्रायः अंग्रेजी साम्राज्य पूर्व इन क्षेत्रों में प्रचलित व्यवस्था को फिर से बहाल करना था।"[2] पहाड़िया विद्रोह, खोण्ड विद्रोह, चुआड़, हो विद्रोह, सन्थाल विद्रोह आदि प्रथम चरण के मुख्य जनजातीय विद्रोहों के उदाहरण हैं। "द्वितीय चरण (1860–1920 ई.) में जनजातीय आन्दोलनों के मुख्यतः दो लक्ष्य थे– प्रथम, आदिवासियों का शोषण करने वाले बाहरी तत्त्वों के विरुद्ध संघर्ष तथा द्वितीय, आदिवासियों द्वारा अपने सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिए क्रमिक प्रयास।"[3] इस संदर्भ में बिरसा मुंडा और टाना भगत आन्दोलन उत्कृष्ट उदाहरण माने जा सकते हैं। अन्य उदाहरण के तौर पर खारवाड़ विद्रोह, नैकदा आन्दोलन, कोण्डा डोरा विद्रोह, भील विद्रोह, भुयान और जुआंग विद्रोह आदि का नाम लिया जा सकता है। "तृतीय चरण (1920 ई. के बाद) में मूलतः इसमें देश–व्यापी बड़े आन्दोलनों, जैसे असहयोग आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन आदि जैसे स्वाधीनता आन्दोलनों के साथ जुड़ने की प्रवृत्ति देखी गई। इन्हें प्रायः ऐसे आदिवासियों ने नेतृत्व प्रदान किया, जो शिक्षित थे। इस दौर में गाँधीवादी सामाजिक कार्यकर्ताओं जैसे जतरा भगत से लेकर अल्लूरी सीताराम राजू जैसे गैर जनजातीय लोगों ने सशक्त नेतृत्व प्रदान किया। इस आलोक में चेंचू आदिवासी आन्दोलन, रम्पा विद्रोह आदि उल्लेखनीय हैं।"[4]

अधिकांश विचारकों का मानना है कि संथाल विद्रोह ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था के विरुद्ध पहला व्यापक सशस्त्र विद्रोह था। "संथाल का अभिप्राय संथाल भारत की प्राचीन जनजातियों में से एक है। प्राचीन समय में यह जनजाति बिहार एवं पश्चिम बंगाल के कतिपय क्षेत्रों में निवास करती थी। इस जनजाति के लोगो का मुख्य व्यवसाय कृषि था और वे लोग जंगलों को काटकर खेती योग्य भूमि बनाकर उस पर खेती किया करते थे। उनके प्रमुख निवास स्थान कटक, छोटा नागपुर, पलामू, हजारीबाग, भागलपुर, पूर्णिया इत्यादि थे।"[5]

"भारत में मुख्यतः अंग्रेजों के शासन काल को औपनिवेशिक या उपनिवेश काल कहा जाता है। यह काल सन 1760 ई. से 1947 ई. तक माना जाता है।"[6] विवेचनात्मक संदर्भ में संथाल विद्रोह 1855 ई. में प्रभावी हुआ तथा वर्ष 1856 ई. में इसका दमन कर दिया गया। इस विद्रोह का केंद्र भागलपुर से लेकर राजमहल की पहाड़ियों तक था। इस विद्रोह का मूल कारण अंग्रेजों के द्वारा जमींदारी व्यवस्था तथा साहूकारों एवं महाजनों के द्वारा शोषण एवं अत्याचार था। इस विद्रोह का नेतृत्व सिद्धू, कान्हू, चांद और भैरव ने किया। "संथाल मूलतः दामन ए कोह नामक क्षेत्र में निवास करने वाले आदिवासी थे। वे उस क्षेत्र में अपनी परंपरागत व्यवस्था एवं अपनी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओं के तहत शांतिपूर्ण तरीके से जीवन–यापन कर रहे थे।"[7] इतना ही नहीं, संथालों का अपना राजनीतिक ढांचा भी था। उदाहरण के तौर पर परहा पंचायत के द्वारा सारे क्षेत्रों पर उनके प्रतिनिधियो के द्वारा शासन किया जाता था। परहा पंचायत के सरदार हमेशा संथालों के हितों की रक्षा का ध्यान रखते थे। वे गांव के लोगों से लगान वसूलते थे तथा उसे एक साथ राजकोष में जमा करते थे। धार्मिक अनुष्ठानों के लिए भी वे अपने लोगों में से ही पुरोहित या पाहन का चुनाव करते थे। लेकिन ब्रिटिश हुकूमत ने आदिवासियों की परंपरागत जीवन शैली में हस्तक्षेप करना आरंभ किया। इस प्रकार इस क्षेत्र में अंग्रेजों के द्वारा किए गए शोषण एवं अत्याचार के कारण विद्रोह प्रारंभ हुआ।

**प्रस्तुति एवं विश्लेषण**

संथाल विद्राह जिसे क्षेत्रीय तौर पर "संथाल–हूल" के नाम से जाना जाता है। यह (अविभाजित बिहार) झारखंड के इतिहास में होने वाले सभी जनजातीय आंदोलनों में संभवतः सबसे

सशक्त, व्यापक एवं प्रभावशाली आंदोलन था, क्रांतिकारी विद्रोह था। यह वर्तमान झारखंड के पूर्वी क्षेत्र जिसे संथाल परगना "दामन–ए–कोह" (भागलपुर व राजमहल पहाड़ियों के आस–पास का क्षेत्र) के नाम से जानते हैं। यह क्षेत्र वर्तमान झारखण्ड के सबसे बड़े जनजातीय समूह संथालों का निवास स्थल है। संथालों के आक्रोश एवं विद्रोह का मुख्य कारण यह था कि ब्रिटिश काल में साहूकार तथा औपनिवेशिक प्रशासक दोनों ही संथालों का शोषण किया करते थे। "दिकुओं (बाहरी लोगों) तथा व्यापारियों द्वारा संथालों द्वारा लिए गए ऋणों पर 50 प्रतिशत से लेकर 500 प्रतिशत तक ब्याज वसूले जाने के उदाहारण मिलते हैं तथा और भी कई तरीकों से आदिवासियों का शोषण किया गया। उस समय आदिवासी चूँकि पढ़े–लिखे नहीं होते थे, अतः उनसे जालसाजी कर तय दर से अधिक ब्याज वसूलना और यहाँ तक की उनकी जमीनों को भी हड़प लेना आम बात थी।"[8] जब वे ऐसी शिकायतें लेकर प्रशासन या पुलिस के पास जाते थे तो भी उन्हें निराशा ही हाथ लगती थी। इतना ही नहीं, उस दौरान ब्रिटिश सरकार ने भागलपुर–वर्दमान रेल परियोजना के तहत रेल लाइनें बिछाने के लिए बड़ी संख्या में संथालों को बेगार मजदूरों के तौर पर बलात भर्ती किया। इस घटना ने संथाल विद्रोह के तात्कालिक कारण का काम किया।

आलोच्य परिप्रेक्ष्य में कई ऐसे तथ्य हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि वास्तव में 1855 का संथाल विद्रोह ही प्रथम स्वतंत्रता संग्राम रहा है। "शोषण, अत्याचार और ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ हुए इस हूल क्रांति को हर साल 30 जून को हूल दिवस के रूप में मनाया जाता है। भारत में हुए अब तक के सबसे बड़े और प्रथम आदिवासी विद्रोहों में से एक बड़ा विद्रोह 'हूल विद्रोह' को माना जाता है। यह संथाल परगना में घटित हुआ था।"[9] संथाल परगना का व्यापक विस्तार उत्तर में बिहार के भागलपुर से दक्षिण में ओडिशा तक तथा हजारीबाग से अविभाजित बंगाल की सीमा तक विस्तृत था। शेष सभी आदिवासियों की तरह संथाल आदिवासी भी जंगलों में निवास करते थे। अपने परंपरागत तौर–तरीके से रहते और वहां खेती करते थे। वैसे तो यह विद्रोह एवं लड़ाई महाजनों और साहूकारों के विरुद्ध थी जो इन आदिवासियों की जमीन पर मनमाने कर वसूलते, भारी ब्याज में ऋण देते थे और ऋण के साथ ही फसल भी देने को मजबूर करते थे। परिणामस्वरूप कई बार उन्हें महाजनों को न केवल अपनी फसल देनी पड़ती थी, अपितु उसके साथ अपने पालतू जानवरों, हल, बैल,जमीन और फसल भो देने को मजबूर होना पड़ता था। इस प्रकार बहुत शीघ्र ही वे सभी आदिवासी लोग बंधुआ मजदूर के रूप में परिवर्तित हो जाते तथा फिर उन महाजनों, साहूकारों के खेतों और घरों में काम करने हेतु विवश हो जाते।

दरअसल संथालों के शोषण में अंग्रज भी महाजनों के साथ बराबर के भागीदार थे। महाजन जहां एक ओर संथालों की जमीन हड़पना चाहते थे और वही दूसरी ओर अंग्रेज उनके जंगलों में मौजूद खनिज संपदा को लूटते तथा आदिवासी रीति–रिवाज व परंपराओं में निरंतर हस्तक्षेप करते रहते। इन लोकप्रिय प्रतिरोधों का एक और कारण था। और वह कारण था– अंग्रेजों द्वारा प्रारंभ किए गए तथाकथित सामाजिक धार्मिक सुधार जो कि अक्सर ईसाई मिशनरियों द्वारा चलाया गया था।

गोया, आदिवासियों ने अपने आदिम एवं परंपरागत धर्म के खिलाफ होते घुसपैठ के कारण भी उनका विरोध किया और अंग्रेजों ने इसके के लिए संथालों पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। जंगल और जमीन उनकी आजीविका के मुख्य संसाधन थे। जीवित रहने के लिए जिन आधारभूत वस्तुओं की उन्हें आवश्यकता होती थी, उनकी पूर्ति वे जंगलों से ही किया करते थे। लेकिन अंग्रेजों ने आदिवासियों की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था और उनके परंपरागत समुदायों को नष्ट करने का प्रयत्न किया। "शांतिपूर्ण जीवन यापन करने वाले आदिवासियों का जनजीवन उन लोगों ने एक हद तक तहस–नहस भी कर दिया। उनकी जमीनें तो छीनी जा ही रही थीं, साथ ही साथ उनकी सांस्कृतिक पहचान को भी मिटाने का पुरजोर प्रयास जारी था।"[10] अस्तु, ब्रिटिश अत्याचार और शोषण के खिलाफ संथाल परगना के छह भाई बहनों ने महाजन और ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध हूल का आह्वान किया। हूल का अर्थ संथाली भाषा में विद्रोह होता है। इस विद्रोह ने संथालों में विभिन्न क्षेत्रों से आने वाले सामाजिक पृष्ठभूमि के सभी वर्गों को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एकजुट कर दिया।

"इस प्रकार 30 जून 1855 को संथाल परगना के मुर्मू भाई बहनों सिद्धूदृ– कान्हू, चांद–भैरव, फूलों–झानो के नेतृत्व म यह लड़ाई प्रारंभ की गई। ध्यात्व्य है कि अत्याधुनिक हथियारों

से लैस अंग्रेजों के सामने इस विद्रोह में शामिल आदिवासियों ने अपने परंपरागत हथियार तीर, धनुष, टंगिया फरसा इत्यादि का ही प्रयोग किया। संथाल बहनें फूलो–झानो अंग्रेजों की गोलीबारी का परवाह नहीं करते हुए उनके बनाए शिविर में प्रवेश कर गईं तथा उसी शिविर में अंधेरे की आड़ में उन्होंने कई अंग्रेजों को अपनी कुल्हाड़ी से मौत के घाट उतार दिया।"[11] विद्रोह की प्रमुख घटनाओं के आलोक में ब्रिटिश हुकूमत और उनके अत्याचारों की वजह से संथालों न दरोगा महेश लाल दत्त एवं प्रताप नारायण की हत्या कर दी और उसी के साथ संथाल हूल की चिंगारी उठी। "उल्लेखनीय है कि 30 जून 1855 में भगनीडीह में 400 आदिवासी गाँवों के लगभग 6000 आदिवासी इकट्ठा हुए और सभा की तथा सिद्धू, कान्हू, चाँद तथा भैरव नाम के चार भाइयों एवं फूलो तथा झानो नाम की उनकी दो बहनों के नेतृत्व में यह घोषणा हुई कि बाहरी लोगों को भगाने और विदेशियों का राज्य समाप्त कर सतयुग का राज स्थापित करने के लिए विद्रोह किया जाए।"[12] "सिद्धू और कान्हू ने घोषणा की कि देवता ने उन्हें निर्देश दिया है कि आजादी के लिए हथियार उठा लो।"[13] "विद्रोहियों ने सिद्धू को राजा, कान्हू को मंत्री, चांद को प्रशासक तथा भैरव को सेनापति घोषित किया। विद्रोह का मुख्य उद्देश्य बाहरी लोगों को भगाना, विदेशियों का राज हमेशा के लिए समाप्त करना तथा न्याय व धर्म का राज स्थापित करना था।"[14]

संथालों ने महाजनों एवं जमींदारों पर हमले शुरू कर दिए तथा उन्होंने साहूकारों के मकानों को उन दस्तावेजों के साथ जला दिया गया जो गुलामी के प्रतीक थे। इतना हीं नहीं, संथालों ने पुलिस स्टेशन, रेलवे स्टेशन, रेलवे इंजीनियर के बंगलों तथा डाक ढोने वाली गाड़ियों को भी जला दिया। इस प्रकार आदिवासी लोगों ने ब्रिटिश दफ्तरों एवं संस्थानों, थाना, डाकघरों व अन्य सभी ऐसे संस्थाओं पर हमला करना शुरू कर दिए जिन्हें वे "गैर–जनजातीय" प्रतीक के द्योतक मानते थे।

उल्लेखनीय है कि संथाल विद्रोह को कुचलने के लिए अविभाजित बंगाल के गवर्नर जनरल के नेतृत्व में अतिरिक्त अंग्रेज सेना को बुलाया गया। एक बार फिर से संथालों पर अंग्रेजों द्वारा एक बड़ा आक्रमण किया गया जिससे संथालों को बहुत बड़ी क्षति हुई और विद्रोही उस क्षेत्र को मजबूरी में छोड़ कर चले गए। फिर भी संथाल अंग्रेजों का मुकाबला हर हालात में करते रहे। हजारों की संख्या में संथाल आदिवासी अंग्रेजों से लड़े और अपनी माटी के लिए शहीद हुए। फिर अंग्रेज सरकार की तरफ से आदेश सुनाया गया कि अगर संथाल आत्मसमपण कर दें तो उनके नेताओं को छोड़कर बाकी सभी को माफ कर दिया जाएगा। उस क्षेत्र में शांति स्थापना की पहल की और कहा गया कि उनकी समस्याओं का निवारण किया जाएगा। हालांकि, इस फरमान के बावजूद किसी भी संथाल ने आत्मसमर्पण नहीं किया। फलस्वरुप उसी वर्ष नवंबर के महीने में ब्रिटिश शासकों ने अविभाजित बंगाल के संथाल अंचलों को ब्रिटिश शासन के हवाले कर दिया तथा सरकार ने घोषणा की कि जिस भी संथाल के हाथों में परंपरागत हथियार देखा जाएगा उसे ब्रिटिश सरकार का विरोधी या दुश्मन माना जाएगा और उसे जेल मे डाल दिया।

वैसे तो पहले संथालों की लड़ाई साहूकारों और महाजनों से थी, लेकिन इस आदेश के यह लड़ाई जल, जंगल, जमीन और आदिवासी अस्मिता की पहचान बन चुकी थी। यही कारण है कि सरकार को संथालों के विद्रोह को कुचलने के लिए उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में मार्शल लॉ लगाना पड़ा। "मेजर बरो के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना की लगभग 10 टुकडियां भेजी गई, लेकिन उन्हें संथालों ने परास्त कर दिया। फिर विद्रोही नेताओं को पकड़ने के लिए 10 हजार रुपये का इनाम घोषित किया गया। इस क्रम में सबसे पहले सिद्धू पकड़ा गया और उसे 05 दिसम्बर को फांसी दे दी गई तथा चाँद व भैरव पुलिस की गोली से मारे गये। अंततः कान्हू भी पकड़ा गया और उसे 23 फरवरी, 1856 को फांसी दे दी गई।"[15] इस प्रकार अंग्रेजों ने इस विद्रोह का दमन कर दिया गया। "जनरल लोयड, ले. थोम्सन, रीड तथा कैप्टन एलेग्जेडर को इस विद्रोह के दमन का श्रेय दिया जाता है।"[16] यद्यपि अंग्रेजों ने संथाल विद्रोह का दमन कर दिया, फिर भी यह विद्रोह झारखण्ड के इतिहास में अपना विशेष महत्त्व रखता है। इस विद्रोह ने आदिवासियों को जागरूक करने का उल्लेखनीय कार्य किया जिससे आगे होने वाले आंदालनों के मार्ग प्रशस्त हुआ। "सरकार ने संथाल लोगों के लिए पृथक सन्थाल परगना बनाकर शान्ति स्थापित करने की कोशिश की और दुमका, देवघर, गोड्डा व राजमहल उप–जिले बनाए गये।"[17] इतना ही नहीं, इस क्षेत्र को निषिद्ध क्षेत्र घोषित कर यहाँ बाहरी लोगों के प्रवेश एवं उनकी गतिविधि को नियंत्रित किया गया जो कि आदिवासियों की एक पुरानी

मांग थी। "जोर्ज युल के नेतृत्व में नया पुलिस कानून पारित किया गया। कालांतर में संथाल परगना काश्तकारी अधिनियम पारित किया गया ताकि जनजातीय भूमि के हस्तांतरण पर रोक लगाई जा सके।"[18] "कार्ल मार्क्स ने संथाल हूल को भारत की प्रथम जनक्रांति की संज्ञा दी। इसकी चर्चा उन्होंने अपनी बहुचर्चित पुस्तक द कैपिटल में भी की है।"[19]

निष्कर्ष

संथालों का विद्रोह एक जनजातीय विद्रोह था जो मूलतः जाति एवं धर्म के नाम पर संगठित किया गया था। यही वजह है कि उनमें वर्ग भावना का संचार नहीं हुआ था। उन्होंने जातीय आधार पर अपनी पहचान बनाई थी। "संथाल विद्रोह एक संगठित आंदोलन के रुप में था जिसने करीब 6000 से भी ज्यादा लोगों को एकजुट किया। अपनी मूल प्रकृति में संथाल विद्रोह एक सशस्त्र क्रांति के रूप में प्रकट हुआ था। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य की सुनियोजित सत्ता से टकराना था।"[20] विद्रोहियों के हथियार परंपरागत एवं दकियानूसी था। जहां एक ओर वे तीर धनुष एवं भाले का प्रयोग करते थे, वही दूसरी ओर ब्रिटिश सैनिक अत्याधुनिक शस्त्रों से लैस थे। यह एक स्थानीय आंदोलन था जिसके लिए बहुत सारे जातिगत एवं धर्मगत बातें उत्तरदायी थीं। परिणामस्वरुप संथाल परगना नामक एक प्रशासनिक इकाई का गठन किया गया। संथाल परगना टेनेंसी एक्ट को लागू किया गया। अंग्रेजों तथा संथालों के बीच संवाद स्थापित करने के लिए ग्राम प्रधान को मान्यता दी गयी। समवेततः संथाल विद्रोह औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध प्रथम सशस्त्र विद्रोह था। "सिद्धू और कान्हो के संघर्ष की प्रशंसा रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी की है। संथाल समुदाय झारखण्ड–बंगाल के सीमावर्ती क्षेत्रों के पर्वतीय इलाकों, जैसे मानभूम, बड़ाभूम, सिंहभूम, मिदनापुर, हजारीबाग, बाँकुड़ा क्षेत्र आदि में रहते थे। कोलों के जैसे ही संथालों ने भी लगभग उन्हीं कारणों के चलते अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया।"[21] भले ही हजारों संथालों ने अपने हक के लिए कुर्बानी दे दीं, परंतु उन्होंने यह साबित कर दिया कि निरीह जनता भी दमन और अत्याचार एक सीमा के बाद बर्दास्त नहीं कर सकती। सरकार को संथाल की माँगों को बाद में पूरा करने का प्रयास किया जाने लगा। कालांतर में सरकार ने संथालपरगना को जिला बनाया। फिर भी आदिवासियों पर दमन होता ही रहा। "संथाल विद्रोह से प्रेरणा लेकर आदिवासियों ने आगे भी सरकार के खिलाफ कई विद्रोह किए। भारत के स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में ऐसे विद्रोहों का स्वरुप स्थानीय होते हुए भी उनका महत्त्व विस्तृत एवं व्यापक था, राष्ट्रीय था।"[22]

संदर्भ–सूची–


01. केदार प्रसाद मीणा , आदिवासी विद्रोह , अनुज्ञा बक्स, दिल्ली , 2015, पृ. सं. 25
02. हरीश कुमार, स्वतंत्रता आदोलन और आदिवासी विद्रोह, सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद. 2001, पृ. सं. 11
03. वही, पृ. सं. 16,
04. वही, पृ. सं. 17,
05. वही, पृ. सं. 22,
06. आलोक सिन्हा, भारत में जनजातीय आंदोलनों का राष्ट्रोय परिदृश्य, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, 1999, पृ. सं. 112
07. वही, पृ. सं. 125
08. मधुकर सिंह, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम–संथाल विद्रोह, सावित्री प्रकाशन, दिल्ली. 1999, पृ. सं. 04,
09. एस. के. वर्णवाल, आदिवासी विद्रोह, संकल्प प्रकाशन, मेरठ, 1996, पृ. सं. 46
10. एस. के. बंसल, भारत का इतिहास, विद्या बिहार प्रकाशन, कानपुर, 1996, पृ. सं. 49–50,
11. वीरेन्द्र शुक्ल, आधुनिक भारत में आदिवासी : सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर. 1996, पृ. सं. 111
12. विनय भूषण, स्वाधीनता आंदोलन एवं बिहार, साहित्य मंदिर प्रेस, लखनऊ. 1996, पृ. सं. 89,
13. वही, पृ. सं. 91,

14. वही, पृ. सं. 91,
15. वही, पृ. सं. 92,
16. मधुकर सिंह, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम–संथाल विद्रोह सावित्री प्रकाशन, दिल्ली. 1999, पृ. सं. 21
17. वही, पृ. सं. 28,
18. वही, पृ. सं. 29,
19. वही, पृ. सं. 35–36,
20. हरदीप सिंह, भारत में आदिवासी विद्रोह, प्रांजल प्रकाशन, सागर. 2005, पृ. सं. 105
21. पृथ्वीपाल सिंह, स्वाधीनता संग्राम और जनजातीय विद्रोह, आधार प्रकाशन, पंचकूला. 2001, पृ. सं. 178
22. वही, पृ. सं. 181